पूज्यपादस्वामी पहले हुए हैं। उन्होंने इष्टोपदेश रचा है। गाथा चौथी चलती है न? चौथी का थोड़ा नीचे है, देखो! **श्लोक की नीचे की पंक्ति में उपरिलिखित भाव को दृष्टान्त द्वारा समझाते हैं** - क्या कहते हैं इसमें जरा? कि यह आत्मा है न आत्मा। सर्वज्ञ भगवान तीर्थंकर परमेश्वर ने जो यह आत्मा है, वह भगवान ने देखा है। वह आत्मा तो आनन्द और शुद्धोपयोग ज्ञानमय आत्मा है। समझ में आया? आत्मा जिसे कहते हैं, वह तो—**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।** (समयसार, गाथा-२४) सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने आत्मा को ज्ञान और आनन्दमय देखा है। यह शरीर, वाणी, मन तो सब जड़-मिट्टी है। पुण्य-पाप के भाव हों, वे आस्रव है-विकार है, आस्रवतत्त्व है। भगवान आत्मा, भगवान ने देखा, वह तो शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप है।

(यहाँ) कहते हैं कि उसका जो ध्यान करे, अन्तर्दृष्टि और ज्ञान (करे), उसे मुक्ति मिले; और उसे स्वर्ग (मिलना) तो सरल है - ऐसा कहते हैं। जो सौ कोष, भार को सौ गाँव ले जाने की ताकत है, उस भारवाहक को आधे योजन या आधे मण ले जाना, वह तो सरल है। क्या कहा, समझ में आया? सौ मण भार उठाकर एक दिन में चला जाए, उसे एक, आधे घण्टे में, पाव घण्टे में आधे मण उठाना तो सरल है।

इसी प्रकार जिसे आत्मा के शुद्धस्वरूप आनन्दमूर्ति आत्मा, आत्मा में आनन्द शुद्धस्वरूप की दृष्टि और ध्यान करने से शुद्धता-संवर-निर्जरा हो और उसे मुक्ति मिले, परन्तु वह मुक्ति मिलने से पहले उसे साधारण स्वर्ग का सुख तो बीच में आवे, क्योंकि आत्मा का जो ध्यान करते हुए गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठे अथवा अरिहन्त और सिद्ध परमेश्वर ऐसा कहते हैं, ऐसे आत्मा को (कहते हैं) - ऐसा जो विकल्प उठे, ऐसे विकल्प में उसे पुण्य बँध जाता है। समझ में आया? तो स्वर्ग तो उसे साथ में मिलता ही है। सौ कलशी अनाज हो, उसे सौ गाड़ी घास होता ही है। अनाज पके और घास न हो - ऐसा होगा? अभी घास हुआ हो और अनाज न हो। तुम्हारे में खड़ (घास) को क्या कहते हैं? छप्पनियाँ में अपने हुआ था न? छप्पनियाँ में बाँटा हुआ था बाँटा। अनाज नहीं हुआ था। अनाज नहीं पका परन्तु छह-सात इंच वर्षा आयी थी। (संवत्) १९५६-५६ तब तो दश वर्ष की उम्र थी। (संवत्) १९५६ में भी खबर थी कि यह अनाज पका नहीं, परन्तु पाँच-छह इंच वर्षा आयी, इसलिए थोड़ी घास पकी, परन्तु जहाँ अनाज पके, वहाँ घास पके नहीं - ऐसा हो? (नहीं होता।)

इसी तरह जिसे आत्मा की श्रद्धा और भान बिना व्रत आदि पाले तो उससे पुण्य बँधे तो उसे स्वर्ग आदि मिले-अकेला घास मिले। खड़ (घास)। समझ में आया? यह सुना था, भाई! उस समय, हों! कि बाँटा हुआ है, ऐसा उस दिन सुनते थे। उस समय दश वर्ष की उम्र थी, (संवत्) १९५६ के साल। लोग कहते थे... ए... भगवानभाई! ६६ वर्ष पहले की बात है। तब कहते कि वर्षा बहुत थोड़ी है, इसलिए अनाज पका नहीं, परन्तु थोड़ी बहुत घास हुई है। रीतसर का, रीतसर। बहुत नहीं वापस, साधारण, बांटा कहते।

उसी तरह आत्मा के ध्यान बिना, भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं, ऐसा यह आत्मा, इसके अन्तर सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना अकेले व्रत आदि पाले, पूजा तथा भक्ति आदि करे (तो) पुण्य बँध जाए - घास हो घास; उसे मोक्ष नहीं मिले, उसे अनाज के कण नहीं पके। बसन्तलालजी! उस छप्पनियाँ में, भाई! वर्ष नहीं थी; फिर १९५७ में बहुत वर्षा थी। फिर १९५७ में बहुत वर्षा थी। धान का बहुत ख्याल नहीं। अपना बहुत ध्यान नहीं न। पढ़ते समय का ध्यान था। बहुत वर्षा हुई परन्तु तब छोटी उम्र (और)

बहुत ध्यान कुछ नहीं। तब तो अपना पढ़ने में ध्यान होवे न ? ग्यारह वर्ष की (उम्र) १९५७ का साल। अनाज भी इतना (हो) और घास भी इतनी (हो)।

वैसे ही आत्मा में सुकाल पके। आहा...हा... ! आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध आनन्दस्वरूप, दु:खरहित, विकाररहित, शरीर-कर्मरहित - ऐसा आत्मा, उसकी जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन की आत्मभक्ति हुई, आत्मभक्ति की बात है। जमुभाई ! सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव से कथित आत्मा, हों ! इसके सिवाय अज्ञानी, आत्मा कहते हैं कि ऐसा आत्मा, आत्मा - वह नहीं। सर्वज्ञ प्रभु वीतरागदेव ने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखें; ऐसे परमेश्वर की वाणी में जो आत्मा आया; ऐसे आत्मा को जाने और अनुभव करे, उसे सम्यग्दर्शन होता है। यह भक्ति होती है। जमुभाई ! आहा...हा... !

कहते हैं कि अरे... ! जिसे आत्मा को भक्ति अर्थात् दृष्टि और सम्यग्दर्शन नहीं, ऐसे अकेले व्रत आदि, तप आदि क्रिया करे (तो) शुभभाव से उसे स्वर्ग आदि मिले, परन्तु फिर उसमें सुख माने। मिथ्यादृष्टि तो स्वर्ग में सुख मानता है, धूल में सुख मानता है।

मुमुक्षु - मानना ही पड़े न !

उत्तर - क्या माने ? धूल ! ऐ... जेचन्दभाई ! कहते हैं, मानना पड़े न ! ऐसा कहते हैं। धूल में भी सुख नहीं है। स्वर्ग में सुख है ? यह अभी आगे अधिक कहेंगे। स्वर्ग में भी नहीं और इस धूल में पाँच-पचास लाख पैसा - इसमें पैसे में - धूल में सुख है ? ममता में मूढ़ होकर मानता है। यहाँ वासना कहेंगे।

आत्मा में आनन्द है। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा शाश्वत् आनन्द की मूर्ति आत्मा है। आत्मा में आनन्द है। उसकी आनन्द की खबर नहीं। भगवान तो आत्मा में आनन्द कहते हैं और यह मानता है कि पैसे में, धूल में, स्त्री में और इस स्वर्ग में (सुख है।) ऐ..ई देवानुप्रिया ! यह तुम्हारे से तर्क करते हैं। हाय... हाय... ! क्या करना क्या ? ऐसे देखो न, तुम्हारी भाभी ने कल पूछा था - कैसे है बहिन ? यह शरीर इसका काम किया करता है - ऐसा जवाब भी तुम्हारा ठीक नहीं आता। कल भाई ! बहिन के पास गये थे न ? बीमार है न ! मणिभाई की बहू ! वहाँ गये थे। वहाँ आये थे। कैसे है बहिन ? (तो कहा) यह तो इसका काम किया करता है। यह शरीर, मिट्टी है, जड़-पुद्गल है। यह पुद्गल, अजीव

तत्त्व है, तो अजीवतत्त्व की दशा, अजीव से हुआ करती है। क्या आत्मा के आधीन है? (नहीं)। आत्मा रखे तो रहे - ऐसा है यह?

बड़े महाराजा-राजा बहुत इसके रखवाले हों। देव को बहुत रखवाले हों, लो न! आयुस्थिति पूरी हो तो एकदम देह छूट जाती है, वह छूट जाती है। वहाँ कहाँ आत्मा था? यह तो मिट्टी-धूल है, अजीवतत्त्व है। उसकी संभाल करने से रहता होगा? मोहनभाई! कैसे होगा? ध्यान रखना! यह पैर टूट गया, ऐसे पैर हो गया, तीन दिन तो असाध्य हो गये थे। पुद्गल है, बापू! यह तो अजीव है, भाई! तू तो आत्मा है। आत्मा तो ज्ञान और आनन्द है। उसमें उसकी भक्ति करे, श्रद्धा करे तो संवर हो, निर्जरा हो, मुक्ति हो और बीच में गुण-गुणी के भेद का विकल्प (उठे कि) परमेश्वर ने आत्मा ऐसा कहा है; ऐसा पहले स्मरण आवे, ऐसे विकल्प, में पुण्य बंध जाए कि जिस पुण्य में इसे स्वर्ग तो सहज ही मिल जाए; परन्तु उस स्वर्ग में, सम्यग्दृष्टि-धर्मी सुख नहीं मानता। आहा...हा...! अरे...! कुछ पता नहीं पड़ता।

यह मनुष्यदेह अनन्त काल में कठिनता से मिली है। इसमें क्या करने का है, यह समझे नहीं और ऐसे का ऐसा कषाय करके कषाय-राग-द्वेष करके होली (सुलगा कर) भिखारी चला जाता है। जैसे गलुडिया (कुत्ते का पिल्ला) मरे, गलुडिया समझ में आता है। कुत्ती का बच्चा; वैसे इस पिल्ले के (पास) पाँच-दश लाख रुपये हों धूल, जैसा पिल्ला जैसा भिखारी होकर मरकर चला जाता है। मलूकचन्दभाई!

यहाँ कहते हैं, **देखो जो भार को ढोनेवाला अपने भार को दो कोस तक आसानी और शीघ्रता के साथ ले जा सकता है,...** है दृष्टान्त? दृष्टान्त देते हैं। भारवाहक मजदूर जिस भार को दो कोस तक सरलता से, सहज-सहज शीघ्रता से, उतावल से ऐसे ले जाता है। **तो क्या वह अपने भार को आधा कोस ले जाते हुए खिन्न होगा?** उसे एक आधे कोस ले जाने में क्या खेद होगा? सुडौल शरीर हो और दो मण, आधे मण सिर पर उठाना हो तो वह तो सरपट चला जाए, दौड़ता चला जाए। समझ में आया?

भार को ले जाते हुए खिन्न न होगा। भार को उठाने से खेद नहीं करेगा। यह दृष्टान्त (हुआ) **बड़ी शक्ति के रहने या पाये जाने पर...** जहाँ भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा, शुद्धोपयोग की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र में रमता हो - इतनी जिसे पुरुषार्थ

की ताकत है, (उसे) **अल्प शक्ति का पाया जाना तो सहज (स्वाभाविक) ही है।** उसमें स्वर्ग का पुरुषार्थ तो साधारण अन्दर आ जाता है। ओहो...हो... ! समझ में आया ? जहाँ आत्मा अन्दर शुद्धोपयोग का पुरुषार्थ / ताकत रखता है... मूल तो ऐसा कहते हैं, भाई ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द की मूर्ति परमेश्वर ने कही और देखी तथा जानी; ऐसा जिसने अन्तर में आत्मा को अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है—ऐसा शुद्धोपयोग का आचरण पर्याय में प्रगट किया, उसे कहते हैं कि शुभउपयोगरूपी आचरण को बीच में साधारण हल्का मार्ग तो आये बिना रहेगा नहीं। आहाहा... ! समझ में आया ? जमूभाई !

मुमुक्षु : .....

उत्तर : अब यह भाई तो जोड़ी साथ में ही पड़ा हो। कहा न, उसे बुलाना नहीं पड़ता।

कहते हैं भार का लेनेवाला दो गाँव में... समझ में आया ? जो भार ले जाता है, वह भी शीघ्रता से ऐसे दौड़ता ले जाता है। वह आसानी से और शीघ्रता से दो, आसानी से अर्थात् सुख से सुख से और शीघ्रता से अर्थात् उतावल से एकदम ले जाता है। उसे कुछ भार नहीं लगता। तो क्या उसे आधा कोस ले जाने में खेद होगा ? नहीं, ऐसा। **बड़ी शक्ति के रहने या पाये जाने पर अल्प शक्ति का पाया जाना तो सहज (स्वाभाविक) ही है।** भगवान आत्मा, उसकी-आत्मा की भक्ति। जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन-ज्ञान जगा, वह आत्मा की भक्ति हुई। उसे परमेश्वर की भक्ति का शुभराग आता है, गुण-गुणी के भेद का राग होता है। परमेश्वर ऐसा कहते, इस आत्मा का स्वरूप भगवान में ऐसा कहा है कि केवलज्ञान ऐसे प्राप्त होता है, ऐसे विकल्प, धर्मी जीव को आत्मा का अन्तर पुरुषार्थ करने में ऐसे विकल्प आते हैं। उस विकल्प में उसे साधारण पुण्य बँधे और स्वर्ग तो सहज मिल जाता है। जिसे मोक्ष मिलना सरल है, फिर स्वर्ग मिलना तो कहाँ महँगा है ? कहते हैं। समझ में आया ? **सहज (स्वाभाविक) ही है।** इसका दोहा किया है, लो !

आत्मभाव यदि मोक्षप्रद, स्वर्ग है कितनी दूर।
दोय कोस जो ले चले, आध कोस सुख पूर।।४।।

आत्मभाव यदि मोक्षप्रद,... भगवान आत्मा के अन्तर शुद्धस्वरूप की दृष्टि करने पर, ज्ञान करने पर जिसे मोक्षपद जहाँ सहज है। **आत्मभाव यदि मोक्षप्रद,...** आत्मा के शुद्धस्वभाव के उपयोग से, दृष्टि से, ज्ञान से उसे मोक्षप्रद तो सहज-सरल है तो **स्वर्ग है कितनी दूर।** मोक्ष जानेवाले आत्मा से, आत्मभक्तिवाले को स्वर्ग तो बीच में साधारण आयेगा। कहो, बसन्तीलालजी! समकिती जीव मरकर स्वर्ग में ही जाता है। आत्मा की शुद्धश्रद्धा और ज्ञान, भगवान कहते हैं वैसी दृष्टि करे, वह जीव मरकर अभी स्वर्ग में ही जाता है। अभी केवलज्ञान है नहीं, समझ में आया?

जिसने आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान किया है, वह (स्वर्ग में भी जाता है) भान किये बिना अकेले अज्ञानी व्रत, तप, क्रियाकाण्ड, दया, दान आदि करे तो वह थोड़ा खड़ (भूसा) बाँधता है। साधारण स्वर्ग जाता है। उसे धर्म नहीं होता, उसे मुक्ति नहीं होती, उसे संवर-निर्जरा नहीं होते। समझ में आया? आहाहा...!

जिसे **आत्मभाव यदि मोक्षप्रद,...** भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य बिराजमान प्रभु आत्मा स्वयं है यह आत्मा। चैतन्य का सूर्य! ऐसे चैतन्य की जिसने भक्ति की और विकार की भक्ति दृष्टि में से छोड़ दी। क्या कहा समझ में आया? उसे शुभभाव आवे, उसकी भक्ति छोड़ दी है। शुभभाव आवे अवश्य (परन्तु) रुचि है नहीं। अज्ञानी को शुभभाव आवे, उसमें रुचि है। शुभभाव हो, उसमें रुचि है कि हम पुण्य बाँधेंगे और हम स्वर्ग में जायेंगे और हम फिर अवतार लेंगे तो पुनः मनुष्य होंगे, सेठ होंगे, फिर भगवान के पास जायेंगे। समझ में आया? उसे आत्मा का भान नहीं है।

धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव को तो आत्मा का भान है। अरे..! मैं आत्मा हूँ न! मेरा तो ज्ञान और आनन्दस्वभाव है न! मेरा आनन्द कहीं बाहर में नहीं है। भले गृहस्थाश्रम में समकिती हो, हजारों रानियाँ हों... संसार में तीर्थंकर भगवान अरनाथ, कुन्थुनाथ, शान्तिनाथ चक्रवर्ती थे न? छियानवें हजार रानियाँ थीं, अन्तर में आनन्द मानते, पर में नहीं; आनन्द तो मुझमें है। यह जरा सा आसक्ति का राग आता है, वह दुःख है... दुःख है... दुःख है। समझ में आया? आहाहा...!

कहते हैं **आत्मभाव यदि मोक्षप्रद, स्वर्ग है कितनी दूर।** उसे स्वर्ग जाना, वह

कितनी दूर पड़ेगा ? वह तो अत्यन्त नजदीक में होता है। **दोय कोस जो ले चले, आध कोस सुख पूर। सुख पूर।**

इस प्रकार से आत्म-शक्ति को जब कि स्वर्ग-सुखों का कारण बतला दिया गया... आत्मशक्ति को (कारण) बतलाया है, इसका अर्थ क्या ? कि आत्मा की भक्ति का स्वरूप श्रद्धा, ज्ञान होने पर, अन्दर अभी शुभराग आये बिना (रहता नहीं)। आत्मा है। जब ध्यान करने बैठे, पहले भान तो हुआ हो परन्तु जब स्थिर होने बैठे, तब उसे (विकल्प आते हैं) कि यह आत्मा है, यह चिदानन्द है, यह शुद्ध है, पूर्ण है, यह सामान्य है - ऐसा जो विकल्प उठता है, उस आत्मध्यानी को ऐसे विकल्प में स्वर्ग का साधन हो गया है। वह शुभराग, स्वर्ग का साधन होता है। समझ में आया ?

तब शिष्य पुनः कुतूहल की निवृत्ति के लिये पूछता है कि 'स्वर्ग में जानेवालों को क्या फल मिलता है ?' समझ में आया ? **आचार्य इसका स्पष्ट रीति से उत्तर देते हुए लिखते हैं -**

आचार्य इसका स्पष्ट रीति से उत्तर देते हुए लिखते हैं -

हृषीकजमनातंकं दीर्घकालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव।।५।।

अर्थ - स्वर्ग में निवास करनेवाले जीवों को स्वर्ग में वैसा ही सुख होता है, जैसा कि स्वर्ग में रहनेवालों (देवों) को हुआ करता है, अर्थात् स्वर्ग में रहनेवाले देवों का ऐसा अनुपमेय (उपमा रहित) सुख हुआ करता है कि उस सरीखा अन्य सुख बतलाना कठिन ही है। वह सुख इन्द्रियों से पैदा होनेवाला आतंक से रहित और दीर्घ काल तक बना रहनेवाला होता है।

विशदार्थ - हे बालक! स्वर्ग में निवास करनेवालों को, न कि स्वर्ग में पैदा होनेवाले ऐकेन्द्रियादि जीवों को। स्वर्ग में, न कि क्रीड़ादिक के वश से रमणीक पर्वतादिक में ऐसा सुख होता है, जो चाहने के अनन्तर ही अपने विषय को अनुभव करनेवाली स्पर्शनादिक इन्द्रियों से सर्वांगीण हर्ष के रूप में उत्पन्न हो जाता है। तथा जो

आतंक (शत्रु आदिकों के द्वारा किये गये चित्तक्षोभ) से भी रहित होता है, अर्थात् वह सुख राज्यादिक के सुख के समान आतंकसहित नहीं होता है। वह सुख भोगभूमि में उत्पन्न हुए सुख की तरह थोड़े कालपर्यन्त भोगने में आनेवाला भी नहीं है। वह उल्टा, सागरोपम काल तक, आज्ञा में रहनेवाले देव-देवियों के द्वारा की गई सेवाओं से समय-समय बढ़ा-चढ़ा ही पाया जाता है।

'स्वर्ग में निवास करनेवाले प्राणियों का (देवों को) सुख स्वर्गवासी देवों के समान ही हुआ करता है।' इस प्रकार से कहने या वर्णन करने का प्रयोजन यही है कि वह सुख अनन्योपम है। अर्थात् उसकी उपमा किसी दूसरे को नहीं दी जा सकती है। लोक में भी जब किसी चीज की अति हो जाती है, तो उसके द्योतन करने के लिए ऐसा ही कथन किया जाता है, जैसे 'भैया! राम रावण का युद्ध तो राम रावण के युद्ध समान ही था। रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।'

अर्थात्, इस पंक्ति में युद्ध सम्बन्धी भयंकरता की पराकाष्ठा को जैसा द्योतित किया गया है। ऐसा ही सुख के विषय में चाहिये।।५।।

दोहा - इन्द्रियजन्य निरोगमय, दीर्घकाल तक भोग्य।
स्वर्गवासि देवानिको, सुख उनही के योग्य।।५।।

शंका - इस समाधान को सुन शिष्य को पुनः शंका हुई और वह कहने लगा - ''भगवन्! न केवल मोक्ष में, किन्तु यदि स्वर्ग में भी, मनुष्यादिकों से बढ़कर उत्कृष्ट सुख पाया जाता है, तो फिर 'मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो जावे' इस प्रकार की प्रार्थना करने से क्या लाभ?''

गाथा - ५ पर प्रवचन

हृषीकजमनातंकं दीर्घकालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव।।५।।

अर्थ - स्वर्ग में निवास करनेवाले जीवों को स्वर्ग में वैसा ही सुख होता है, जैसा कि स्वर्ग में रहनेवालों (देवों) को हुआ करता है,... ऐसा कहते हैं कि देव

को देव जैसा सुख है अर्थात् कि इन्द्रियजन्य के सुखवाले को इन्द्रियजन्य सुख है, मूल तो ऐसा कहना है, भाई! आत्मा का जो अतीन्द्रिय सुख है – ऐसा देव में सुख नहीं है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आत्मा का सुख है। आत्मा मन, वाणी, और राग से भिन्न करके और जो आत्मा का आनन्द आवे ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द स्वर्ग में नहीं है, स्वर्ग की सुख की दशा में (नहीं है)। समझ में आया? स्वर्ग में जाये तो कैसा सुख हो? ऐसा पूछते हैं कि इसके जैसा हो, उपमा देनी है। क्या देना? अतीन्द्रिय सुख तो वहाँ नहीं। इस इन्द्रियजन्यवाले को इन्द्रियजन्य सुख मिले। आहाहा..!

अर्थात् स्वर्ग में रहनेवाले देवों का ऐसा अनुपमेय (उपमा रहित) सुख हुआ करता है... जरा-सा मनुष्य की अपेक्षा उसके सुख का वर्णन अधिक करते हैं **(उपमा रहित) सुख हुआ करता है...** उसे उपमा नहीं (कि) स्वर्ग के जीव को इतना सुख है। **उस सरीखा अन्य सुख बतलाना कठिन ही है।** उसके जैसा सुख दूसरे इन्द्रियों में, मनुष्यपने में है नहीं। मनुष्यपने की अपेक्षा से बात है, हाँ! अतीन्द्रियसुख की अपेक्षा से बात नहीं है। इन्द्रियसुख जो मनुष्यपने में है, उसकी अपेक्षा देव का सुख (अधिक है)। बहुत शुभभाव हुए होते हैं न? शुभभाव। अशुभभाव करे तो पाप बाँधे। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, पाप (परिणाम है) और यह पुण्य-शुभभाव होवे तो उसमें पुण्य बाँधे। शुद्धोपयोग करे तो उसमें निर्जरा और मुक्ति का कारण होता है। समझ में आया? तो कहते हैं, उसका सुख तो (ऐसा है कि उसे) इन्द्रिय के मनुष्य के सुख की उपमा नहीं दी जा सकती – ऐसा कहते हैं। यह इन्द्रिय के सुख की उपमा, हाँ! वहाँ अतीन्द्रिय सुख तो है ही नहीं और **उस सरीखा अन्य सुख बतलाना कठिन ही है।** क्योंकि इन्द्रिय का सुख स्वर्ग का मिले ऐसा अन्यत्र – मनुष्यपने में नहीं है।

वह सुख इन्द्रियों से पैदा होनेवाला आतंक से रहित... उसमें विघ्न नहीं है। स्वर्ग के सुख को विघ्न नहीं है। यहाँ तो विघ्न आता है। राज्यादि का सुख हो तो दूसरा राजा आकर विघ्न करे, शत्रु विघ्न करे, वीर विघ्न करे। स्पष्टीकरण करेंगे, हाँ! **आतंक से रहित और दीर्घ काल तक बना रहनेवाला होता है।** स्वर्ग में सुख तो सागरोपम तक रहता है। सागरोपम! एक सागर किसे कहते हैं? एक सागरोपम में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम होते हैं और एक पल्योपम में असंख्यात अरबों वर्ष होते हैं। समझ में आया? पल्योपम और

सागरोपम सुना है या नहीं ? नहीं सुना ? पैसे में सुना है ? भगवान परमेश्वर कहते हैं कि बहुतों को स्वर्ग में सुख सागरोपम का होता है। सागर अर्थात् समुद्र। जैसे समुद्र के बिन्दु का पार नहीं, वैसे इसमें वर्ष का उसे पार नहीं। इतना पुण्य बँधे और स्वर्ग में जाये तथा एक सागरोपम में दश कोड़ाकोड़ी पल्योपम (होते हैं) और एक पल्योपम में असंख्यात अरब वर्ष होते हैं।

पहला देवलोक है न ? सौधर्म देवलोक। यह चन्द्र-सूर्य तो ज्योतिष है। ऊपर सौधर्म देवलोक है। देवलोक का नाथ आता है या नहीं ? भगवानभाई ! क्षमापना में आता है। तुम्हारे आता है या नहीं ? पहला सौधर्म देवलोक, दूसरा ईशान देवलोक नाम तो आवें, क्षमापना में। कौन जाने क्या होगा ? समझ में आया ? पहला सौधर्म देवलोक है, वहाँ बत्तीस लाख विमान हैं, उनका इन्द्र-शकेन्द्र-साहिब, उनका नाथ-राजा है, इन्द्र है एकावतारी है -एक भव में मोक्ष जानेवाला है और उसकी इन्द्राणी भी एक भव में मोक्ष जानेवाली है। अभी है। सौधर्म, ईशान इन्द्र आदि एकावतारी जीव हैं। सौधर्म की जो रानी - देवी है, वह भी एकावतारी है, दोनों वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। अभी शकेन्द्र सौधर्म देवलोक में है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा के भक्त हैं और भगवान के भक्त हैं। दोनों आत्मा के भक्त हैं और ऐसे भगवान के भगत हैं। भगवान के भी भक्त हैं। एक सौधर्म देवलोक का एक भव में महाविदेह के असंख्य तीर्थंकर का जो जन्म महोत्सव और केवल (ज्ञान) महोत्सव करता है। महाविदेह के, हाँ ! यहाँ का नहीं। यहाँ तो एक दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम में एक चौबीसी होती है। एक चौबीसी में ऐसे तो बहुत इन्द्र हो जाते हैं परन्तु वहाँ दो सागर की स्थिति है। आत्मा की भक्ति है और भगवान की भक्ति है। भगवान के पास जाते हैं महाविदेहक्षेत्र में भगवान जन्मे... महाविदेहक्षेत्र में अभी सीमन्धर परमात्मा तीर्थंकररूप में समवसरण में बिराजमान हैं। करोड़पूर्व की आयु, पाँच सौ धनुष की देह, जमीन पर मनुष्यरूप से विराजमान हैं। समवसरण है, वहाँ इन्द्र जाते हैं। उस इन्द्र के एक भव में असंख्यात ऐसे तीर्थंकर के जन्म, दीक्षा, केवल, और निर्वाण महोत्सव करते हैं। ऐसी भक्ति का शुभभाव होता है और आत्मभक्ति भी साथ में है, वहाँ स्वर्ग में उसे दोनों हैं। समझ में आया ?

यह तो भक्ति करके गया है। आत्मा की भक्ति – अनुभवदृष्टि करके स्वर्ग में गया है, उसके शुभभाव का फल बड़ा – दो-दो सागर का, पूरी (आयु है) वह सुख तो... आगे कहेंगे, हाँ! वासना... अज्ञानी ने माना है, ज्ञानी उसे (सुख) मानते नहीं। वापस यह कहेंगे।

मुमुक्षु : पहले अच्छा कहकर फिर खराब कहते हैं।

उत्तर : वह अच्छा नहीं है, उसकी व्याख्या बतलाते हैं। मनुष्य के सुख की अपेक्षा उसकी सुविधा अधिक है इतना। वहाँ भी यह की यह श्वेत धूल है, सब यह की यह है। वहाँ कहीं अमृत नहीं, अमृत तो आत्मा में है। समझ में आया? परन्तु इस मनुष्य के प्राणियों को बहुत विघ्नवाला और अल्पकाल का सुख (होता है); उसकी अपेक्षा वहाँ विघ्नरहित और बहुत काल का (होता है)। यह व्याख्या अपेक्षा से अच्छा कहते हैं। बाकी अज्ञानी उसे सुख मानता है, सम्यग्दृष्टि उसे सुख नहीं मानता। जो आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान लेकर वहाँ गया है, उस सुख में उसे सुख मानता ही नहीं। आहाहा...! समझ में आया?

विशदार्थ – हे बालक!... विशेष अर्थ करते हैं। है न? **स्वर्ग में निवास करनेवालों को न, कि स्वर्ग में पैदा होनेवाले ऐकेन्द्रियादि जीवों को।** क्या कहते हैं? स्वर्ग में तो एकेन्द्रिय भी है, स्वर्ग में है न? सौधर्म देवलोक आदि? वहाँ पृथ्वी के एकेन्द्रिय जीव हैं, उनका विमान है न? विमान, वहाँ एकेन्द्रिय जीव है, वहाँ दूसरे वन हैं। समझे न? नाटक है, वहाँ एकेन्द्रिय आदि जीवों को (सुख नहीं है)। वहाँ उत्पन्न हुए एकेन्द्रिय को नहीं। उस स्वर्ग में निवास करनेवाले को सुख है। इस मनुष्य की अपेक्षा उसे शुभ उपयोग का साधन सुख मिला हुआ है। इतना (कहना है)।

स्वर्ग में, न कि क्रीड़ादिक के वश से रमणीक पर्वतादिक में ऐसा सुख होता है,... स्वर्ग में जब हो, तब मनुष्य की अपेक्षा उसे सुख अधिक दिखता है। उस क्रीड़ादिक के वश रमणीय पर्वतादिक में जाये, वहाँ ऐसा सुख नहीं होता। वहाँ कौतुहलता का जरा सा ऐसा होता है न? स्वर्ग में रहनेवाले जीव को सुख अधिक है – ऐसा कहना है। **जो चाहने के अनन्तर ही अपने विषय को अनुभव करनेवाली स्पर्शनादिक इन्द्रियों से सर्वांगीण हर्ष के रूप में उत्पन्न हो जाता है।** स्वर्ग के देव को सुख **चाहने के अनन्तर ही...** इच्छा हो। विषय का अनुभव करने की स्पर्शनादिक पाँच इन्द्रियों की।

देखो! 'आदि' है न? **सर्वांगीण हर्ष के रूप में उत्पन्न...** सम्पूर्ण अंग से उसे हर्ष-राग होता है। हर्ष अर्थात् राग। ऐसा यह इन्द्रियों का सुख है। यह सम्यग्दृष्टि आत्मा का भान करके, दृष्टि अनुभव करके, अभी शुभराग रहा; इसलिए स्वर्ग में गया, उसके सुख की व्याख्या बतलाते हैं। समझ में आया? कहो, इसमें समझ में आया?

यहाँ तो एक-एक अंग को जरा सा इन्द्रिय का सुख लगता है (-ऐसा) यहाँ कहते हैं। वहाँ तो पाँचों इन्द्रिय का - सर्वांगीण-ऐसा कहते हैं न? पाँचों इन्द्रिय का सुख - हर्ष उसे दिखायी देता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दिखायी देता है?

उत्तर : दिखता है, दूसरा क्या है वहाँ? धूल है।

आत्मिक सुख तो परमात्मा स्वयं आत्मा असंख्य प्रदेशी, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा विराज रहा है। उसमें अन्तर की एकाग्रता से जो आनन्द आवे, ऐसा आनन्द तीन काल में दूसरे स्वर्ग आदि में भी नहीं और चक्रवर्ती में भी नहीं और धूल में भी नहीं, इसकी इज्जत और कीर्ति के बड़े ढेर पड़ें, उसमें भी नहीं। राग है, राग है, हर्ष है।

मुमुक्षु : वहाँ तो खाने का भी नहीं।

उत्तर : खाने का क्या काम है वहाँ? हजारों वर्ष में इच्छा हो तो तृप्ति होती है। कण्ठ में से अमृत झरता है। हजारों वर्ष में इच्छा हो, वहाँ कण्ठ में से अमृत झरता है। तृप्त... तृप्त... हो जाता है। अमृत अर्थात् धूल, हाँ! अपने अमी नहीं कहते? अमी... बहुत लूखा मुँह हो जाये। अमी कहते हैं। इसे बहुत अमी आवे। बहुत पुण्य किया है न, इसलिए इच्छा हो वहाँ अमृत (झरता है)। वह आत्मा का अमृत नहीं। आहाहा...!

सम्यग्दृष्टि धर्मी गृहस्थाश्रम में हो, उसे भी आत्मा के सम्यग्दर्शन का जो अतीन्द्रिय स्वाद आवे, ऐसा स्वाद इन्द्रिय के विषय में जहर, जिसमें - विषय में वह स्वाद होता नहीं। समझ में आया? इस मनुष्य के विषय के सुख में है, उसकी अपेक्षा किंचित् ठीक है - ऐसा बतलाकर फिर कहते हैं कि वासना का सुख संसार का है। अज्ञानी ने मानी हुई वासना है कि इसमें सुख है, (बाकी) सुखरूप है नहीं।

तथा जो आतंक (शत्रु आदिकों के द्वारा किये गये चित्तक्षोभ) से भी रहित

होता है,... मनुष्य में तो सुख आदि पाँच-पचास लाख हो, राजा हो वहाँ कोई शत्रु आवे... ऐई.. ! क्षोभ हो जाता है। क्या होगा ? राज्य का क्या होगा ? अमुक का क्या होगा ? पैसेवालों को लो न ! दो-पाँच-दस करोड़ आये हों, सम्हालना कैसे ? डालना कैसे ? करना क्या ? कैसे करना ? उसे यह होली सुलगती ही होती है। कल्पना !

मुमुक्षु : उसकी व्यवस्था करे।

उत्तर : व्यवस्था करने का क्या है ? राग है। मलूपचन्दभाई ! क्या होगा ? अरे ! होली सुलगती होती है। ऐसे से ऐसा और ऐसे से ऐसा और ऐसे से ऐसा, हर्ष नहीं। पूछो न उसके लड़के को। परन्तु इसे इसके लड़के का पता है न ! उसके पास दो करोड़ रुपये हैं। वह एक बार सब कहता था। कहीं हर्ष (नहीं) मेरे पास तो दूसरा क्या कहे तब ? धूल में भी नहीं तेरे दो करोड़ में, दस करोड़ में। मिट्टी है, धूल है। आहाहा.. !

यहाँ तो कहते हैं - राजा का सुख भी विघ्नवाला है। देव का सुख, वह विघ्नरहित है। इतनी बात करनी है। है तो इन्द्रिय का सुख, परन्तु मनुष्य के राजा आदि (के) सुख (विघ्नवाला है)। राजा आदि बड़े राजा, देखो ! समझ में आया ? कैसा राजा ! देखो न, अभी एक बड़ा नहीं था ? एक घण्टे में कितने लाख ? ढाई लाख। एक घण्टे में ढाई लाख की आमदनी। उठा दिया, उठा दिया। इसे राज्य में वह निकलता... क्या कहलाता है ? तेल, तेल का कुँआ। उसके बाप का राज्य छोटा था परन्तु उसके (राज्य में) ऐसे पेट्रोल के कुँए निकले कि उसकी कितनी आमदनी ! एक घण्टे में ढाई लाख की इतने चौबीस घण्टे, इतने महीने और इतने वर्ष... बड़े करोड़ों... करोड़ों... करोड़ों... रुपये की (आमदनी)। उसके कुटुम्बियों ने एकदम उठा दिया। यह तो अन्दर विघ्न (आया) बाहर के सुख में क्या है ? इस देव के सुख को विघ्न नहीं है - ऐसा कहना है। देव का पुण्य का शुभभाव का सुख है, उसे जितना काल होता है, उतने काल उसे विघ्नरहित होता है। इतनी बात सिद्ध करनी है, हाँ ! इस मनुष्य को तो चित्त में क्षोभ होता है।

अर्थात् वह सुख राज्यादिक के सुख के समान आतंकसहित नहीं होता है। लो, गद्दी पर बैठा था। आज के समाचार-पत्र में ऐसा सुना था कि उसका भाई है, वह उसे मार डालेगा। उसकी बहुत पीड़ा है, दुःख है। इसने इसके भाई को निकाल दिया था। रोग

भी बहुत (थे), सात रोग आये थे। धूल में भी (सुख) नहीं है। व्यर्थ में मेरा मानकर (भटकता है) कहते हैं कि ऐसी जहाँ प्रतिकूलता है, वैसी प्रतिकूलता स्वर्ग में नहीं है। आत्मा का ध्यान करके, जिसे जरा शुभभाव हुआ है, उसके पुण्य में ऐसा सुख वहाँ होता है।

वह सुख भोगभूमि में उत्पन्न हुए सुख की तरह थोड़े कालपर्यन्त भोगने में आनेवाला भी नहीं है। देखो! सब उपमा दी है। यह युगलिया है न? युगलिया। इस मेरु पर्वत के पास देवकुरू, उत्तरकुरू आदि (भोगभूमि में) युगलिया मनुष्य है। स्वयं जन्में बहिन और भाई और फिर होवे स्वयं पत्नी और पति। तीन-तीन पल्योपम का आयुष्य, तीन गाँव के ऊँचे मेरु पर्वत के पास (होते हैं)। भगवान तीर्थंकर ने कहा है। इन युगलिया को कभी कमाना नहीं पड़ता। कल्पवृक्ष में (सब मिलता है)। उनका सुख भी थोड़े काल का है। तीन पल्योपम का, किसी को दो पल्योपम का, किसी को एक पल्योपम का है। इन्हें (देवों को) सागरोपम का है - ऐसा सिद्ध करना है न? अधिक सिद्ध करना है-इस अपेक्षा से। समझ में आया? **भोगभूमि में उत्पन्न हुए सुख की तरह थोड़े कालपर्यन्त भोगने में आनेवाला भी नहीं है।** यह तो सागरोपम के सुख की व्याख्या बतलानी है। वैसे तो श्रावक पल्योपम, दो पल्योपम जाता है परन्तु यहाँ तो एक उत्कृष्ट सुख की व्याख्या करनी है न!

वह उल्टा, सागरोपम काल तक,... इस स्वर्ग में सागरोपम, असंख्य अरब वर्ष तक इन्द्रियों के सुख (रहते हैं।) आत्मा का ध्यान, सम्यग्दर्शन करके शुभभाव हुए, उसके फल में ऐसा सुख उसे है। अज्ञानी को भी आत्मा के भान बिना शुभभाव से (पुण्य) होवे तो - ऐसा सुख तो होता है, परन्तु उसके पीछे उसे धब्बो नमा... वह स्वर्ग में से मरकर एकेन्द्रियादि में जाता है, मरकर पशु में जाता है। सम्यग्दृष्टि उनमें जाता (नहीं), वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष में जाता है। कहो, समझ में आया?

वह सुख भोगभूमि में उत्पन्न हुए सुख की तरह थोड़े कालपर्यन्त भोगने में आनेवाला भी नहीं है। वह उल्टा, सागरोपम काल तक, आज्ञा में रहनेवाले देव-देवियों के द्वारा की गई सेवाओं से समय-समय बढ़ा-चढ़ा ही पाया जाता है। कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान और ध्यान करके, अनुभव करके जो शुभभाव से स्वर्ग में गया,

उसे आज्ञा में रहनेवाले देव-देवियों द्वारा सेवा (प्राप्त होती है)। खम्बा अन्नदाता! क्या चाहिए? हजारों देवियाँ, हजारों देव उसकी सेवा में है। **समय-समय बढ़ा-चढ़ा...** बढ़ा-चढ़ा अर्थात् क्या? बढ़ता ही बढ़ता सुख, ऐसा कहते हैं। अपने नहीं कहते? एक के बाद एक सुख का... है। समझ में आया?

'स्वर्ग में निवास करनेवाले प्राणियों का (देवों को) सुख स्वर्गवासी देवों के समान ही हुआ करता है।' यह तो इनके सुख जैसा इसे सुख है। इसे आत्मा का सुख नहीं और इसे उपमा मनुष्य के सुख की दी जा सके ऐसा नहीं। ऐसी दो बातें हैं। **इस प्रकार से कहने या वर्णन करने का प्रयोजन यही है कि वह सुख अनन्योपम है।** ऐसे इन्द्रिय का सुख मनुष्य के साथ उपमा नहीं दी जा सकती। **अर्थात् उसकी उपमा किसी दूसरे को नहीं दी जा सकती है। लोक में भी जब किसी चीज की अति हो जाती है,...** बहुत बढ़ जाये। **तो उसके द्योतन करने के लिए ऐसा ही कथन किया जाता है, जैसे 'भैया! राम-रावण का युद्ध तो राम-रावण के युद्ध समान ही था।** ऐसा कहते हैं न! वह तो उसके जैसा है, बापू! **'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।'** महा भयंकर बताना होवे न! भयंकर युद्ध राम-रावण का युद्ध, वह राम-रावण के युद्ध जैसा। वैसा युद्ध दूसरे को होता नहीं। इसी प्रकार स्वर्ग का सुख, स्वर्ग के सुख जैसा, बस! इतना (कहना है)।

अर्थात्, इस पंक्ति में युद्ध सम्बन्धी भयंकरता की पराकाष्ठा को जैसा द्योतित किया गया है। ऐसा ही सुख के विषय में चाहिए। इतना सुख के विषय में जानना। यह भी ऐसा सुख है - ऐसा कहना है।

दोहा - इन्द्रियजन्य निरोगमय, दीर्घकाल तक भोग्य।
स्वर्गवासि देवानिको, सुख उनही के योग्य।।५।।

लो! यह इन्द्रियजन्य से उत्पन्न हुआ और निरोगता... वहाँ तो निरोग है न? इसकी जैसे वहाँ रोग नहीं है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : वहाँ पक्षघात नहीं होता।

उत्तर : पक्षघात नहीं होता। वहाँ पैर काम न करे - ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? जयचन्दभाई!? परन्तु यह तो शोर मचाते जाए और पाप बाँधे, हों! यह तो आत्मा

का ध्यान सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य की प्रतीति की है, आत्मज्ञान में आनन्द माना है, उसे अभी शुभराग कुछ बाकी रह जाए और पुण्य बाँधे, उसकी व्याख्या है। समझ में आया?

'**स्वर्ग में निवास करनेवाले देवों को, दीर्घ काल तक भोग्य**' बहुत काल तक वहाँ रहे, वे '**सुख उन्हीं के योग्य**' लो! अब उसमें से शिष्य ने शंका उठाई, बहुत सुख की व्याख्या करके! इतना अधिक सुख! तब अब आत्मा की भक्ति और आत्मा का आनन्द और धर्म किसलिए करना? आत्मा की भक्ति करके क्या काम है? ऐसा सुख मिले तो बस है। समझ में आया? शिष्य को प्रश्न हुआ।

'**शंका : इस समाधान को सुन शिष्य को पुनः शंका हुई और वह कहने लगा - 'भगवन्! न केवल मोक्ष में, किन्तु यदि स्वर्ग में भी, मनुष्यादिकों से बढ़कर उत्कृष्ट सुख पाया जाता है,...' 'केवल मोक्ष में नहीं...**' ऐसे कि मोक्ष में ही सुख है - ऐसा नहीं। आपके कथनानुसार तो मनुष्यादि से अधिक सुख देखने में आता है। स्वर्ग में तो बहुत सुख... बहुत सुख... बहुत सुख... ओहो...हो...! '**तो फिर मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो जावे इस प्रकार की प्रार्थना करने से क्या लाभ?**' आत्मा का आनन्द प्रगट हो और मेरी मुक्ति हो - उसका क्या काम? शिष्य का प्रश्न है। तुमने सुख की बहुत व्याख्या की। मनुष्य से भी बढ़ा हुआ सुख! मोक्ष तो फिर एक ओर रहा। ऐसा सुख देव का! तो फिर मोक्ष का काम क्या है, इसमें?

संसार सम्बन्धी सुख में ही सुख का आग्रह करनेवाले शिष्य को 'संसार सम्बन्धी सुख और दुःख भ्रान्त हैं।' यह बात बतलाने के लिये आचार्य आगे लिखा हुआ श्लोक कहते हैं -

वासनामात्रमेवैतत्सुखं दुःखं च देहिनां।
तथा ह्यु द्वेजयंत्येते भोगा रोगा इवाऽऽपदि।।६।।

अर्थ - देहधारियों को जो सुख और दुःख होता है, वह केवल कल्पना (वासना या संस्कार) जन्य ही है। देखो! जिन्हें लोक में सुख पैदा करनेवाला समझा जाता है, ऐसे कमनीय कामिनी आदिक भोग भी आपत्ति (दुर्निवार, शत्रु आदि के द्वारा की गई

बेचेनी) के समय में रोगों (ज्वरादिक व्याधियों) की तरह प्राणियों को आकुलता पैदा करनेवाले होते हैं। यही बात सांसारिक प्राणियों के सुख–दु:ख के सम्बन्ध में है।

विशदार्थ – ये प्रतीत (मालूम) होनेवाले जितने इंद्रियजन्य सुख व दु:ख हैं, वे सब वासनामात्र ही हैं। देहादिक पदार्थ न जीव के उपकारक ही हैं और न अपकारक ही। अत: परमार्थ से वे (पदार्थ) उपेक्षणीय ही हैं। किन्तु तत्त्वज्ञान न होने के कारण – 'यह मेरे लिये इष्ट है – उपकारक होने से' तथा 'यह मेरे लिये अनिष्ट है–अपकारक होने से।' ऐसे विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कार, जिन्हें वासना भी कहते हैं – इस जीव के हुआ करते हैं। अत: ये सुख–दु:ख विभ्रम से उत्पन्न हुए संस्कारमात्र ही हैं, स्वाभाविक नहीं। ये सुख–दु:ख उन्हीं को होते हैं जो देह को ही आत्मा माने रहते हैं। ऐसा ही कथन अन्यत्र भी पाया जाता है – 'मुंचांगं'।

अर्थ – इस श्लोक में दम्पतियुगलक वार्तालाप का उल्लेख कर यह बतलाया गया है कि 'वे विषय जो पहिले अच्छे मालूम होते थे, वे ही मन के दु:खी होने पर बुरे मालूम होते हैं।' घटना इस प्रकार है – पति–पत्नी दोनों परस्पर में सुख मान, लेटे हुए थे कि पति किसी कारण से चिंतित हो गया। पत्नी, पति से आलिंगन करने की इच्छा से अंगों को चलाने और रागयुक्त वचनालाप करने लगी। किन्तु पति जो कि चिंतित था, कहने लगा 'मेरे अंगों को छोड़, तू मुझे संताप पैदा करनेवाली है। हट जा। तेरी इन क्रियाओं से मेरी छाती में पीड़ा होती है। दूर हो जा। मुझे तेरी चेष्टाओं से बिलकुल ही आनन्द या हर्ष नहीं हो रहा है।' 'रम्यं हर्म्यं'

रमणीक महल, चन्दन, चन्द्रमा की किरणें (चाँदनी), वेणु, वीणा तथा यौवनवती युवतियाँ (स्त्रियाँ) आदि योग्य पदार्थ भूख–प्यास से सताये हुए व्यक्तियों को अच्छे नहीं लगते। ठीक भी है, अरे! सारे ठाटबाट सेर भर चाँवलों के रहने पर ही हो सकते हैं। अर्थात् पेट भर खाने के लिए यदि अन्न मौजूद है, तब तो सभी कुछ अच्छा ही अच्छा लगता है। अन्यथा (यदि भरपेट खाने को न हुआ तो) सुन्दर एवं मनोहर गिने जानेवाले पदार्थ भी बुरे लगते हैं। इसी तरह और भी कहा है –

'एक पक्षी (चिरबा) जो कि अपनी प्यारी चिरैया के साथ रह रहा था, उसे धूप में रहते हुए भी संतोष और सुख मालूम देता था। रात के समय जब वह अपनी चिरैया से बिछुड़ गया, तब शीतल किरणवाले चन्द्रमा की किरणों को भी सहन (बरदास्त) न

कर सका। उसे चिरैया के वियोग में चन्द्रमा की ठण्डी किरणें सन्ताप व दु:ख देनेवाली ही प्रतीत होने लगीं। ठीक ही है, मन के दु:खी होने पर सभी कुछ असह्य हो जाता है, कुछ भी भला या अच्छा नहीं मालूम होता।'

इन सबसे मालूम पड़ता है कि इन्द्रियों से पैदा होनेवाला सुख वासनामात्र ही है। आत्मा का स्वाभाविक एवं अनाकुलतारूप सुख वासनामात्र नहीं है, वह तो वास्तविक है। यदि इन्द्रियजन्य सुख वासनामात्र-विभ्रमजन्य न होता तो संसार में जो पदार्थ सुख के पैदा करनेवाले माने गये हैं, वे ही दु:ख के कारण कैसे हो जाते? अत: निष्कर्ष निकला कि देहधारियों का सुख केवल काल्पनिक ही है और इसी प्रकार उनका दु:ख भी काल्पनिक है।।६।।

दोहा – विषयी सुख दु:ख मानते, है अज्ञान प्रसाद।
भोग रोगवत् कष्ट में, तन मन करत विषाद।।६।।

गाथा - ६ पर प्रवचन

संसार सम्बन्धी सुख में ही सुख का आग्रह करनेवाले शिष्य को 'संसार सम्बन्धी सुख और दु:ख भ्रान्त हैं।' अरे..! शिष्य सुन! संसार सम्बन्धी जितने पुण्य के सुख स्वर्ग में वर्णन किये, उस सुख का आग्रह करनेवाले शिष्यों, वह संसार सम्बन्धी सुख-दु:ख तेरी भ्रान्ति है। पर में सुख-दु:ख मानना, वह भ्रम है। ओहोहो...! उड़ा दिया सब क्षण में। यह तो आता है, मनुष्य की अपेक्षा दूसरा (होता है) ऐसी बात जरा बीच में बताई, परन्तु तू माने कि वहाँ यथार्थ सुख है... ऐसी मान्यता तो बहिरात्म मिथ्यादृष्टि की होती है। शुभ उपयोग में सुख मिले, वह सुख माने, वह तो मिथ्यादृष्टि मानता है - ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

संसार सम्बन्धी सुख में ही सुख का आग्रह करनेवाले... देखो! सुख में ही आग्रह। वहाँ स्वर्ग में सुख है न? मनुष्य की अपेक्षा बहुत है न! ऐसा आग्रह करनेवाला शिष्य **'संसार सम्बन्धी सुख और दु:ख भ्रान्त हैं।' यह बात बतलाने के लिये आचार्य आगे लिखा हुआ श्लोक कहते हैं-**

वासनामात्रमेवैतत्सुखं दुःखं च देहिनां।
तथा ह्यु द्वेजयंत्येते भोगा रोगा इवाऽऽपदि।।६।।

अर्थ – देहधारियों को... जो यह देह-मिट्टी के धरनेवाले जो जीव हैं, (उन्हें) **जो सुख और दुःख होता है, वह केवल कल्पना (वासना या संस्कार) जन्य ही है। देखो!** सम्यग्दृष्टि तो आत्मा में ही आनन्द मानता है। स्वर्ग में होवे तो आत्मा में आनन्द मानता है; पर में आनन्द नहीं मानता। मनुष्य में चक्रवर्तीरूप से समकिती होवे, भरत चक्रवर्ती लो न! भगवान के पुत्र-ऋषभदेव के पुत्र। 'भरत घर में वैरागी' — आता है या नहीं? हमारा सुख यहाँ (अन्तर में) है; इन रानियों में नहीं, राज्य में नहीं, आबरू में नहीं, कीर्ति में नहीं; हमारा सुख तो अन्तर आत्मा में है। ऐसे सम्यग्दृष्टि धर्मी आत्मा में आत्मा का सुख मानता है। अज्ञानी, बाहर के सुख के विषय आदि भोग के सुख को सुख, भ्रान्ति से-भ्रम से मानता है। ओहोहो..! समझ में आया?

केवल कल्पना जन्य ही है। देखो भाषा! **केवल कल्पना (वासना या संस्कार)...** केवल (अर्थात्) नहीं और केवल कल्पना से मानता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पहले स्वर्ग के सुख का वर्णन बहुत किया। केवल कल्पना है। प्रभु! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा है। ऐसे आनन्द को छोड़कर, अज्ञानी विषय के – इस स्वर्ग के, इस चक्रवर्ती के या देव के या मनुष्य के – इनमें कल्पना-वासना, वास-खोटी गन्ध पड़ गयी है, वे इसे संस्कार अज्ञान के हो गये हैं। समझ में आया?

देखो! जिन्हें लोक में सुख पैदा करनेवाला समझा जाता है,... जिन्हें लोक में सुख पैदा करनेवाला जानने में आता है; **जैसे कमनीय कामिनी आदिक भोग भी....** कमनीय अर्थात् सुन्दर और रूपवान; कामिनी अर्थात् स्त्री और लक्ष्मी, मकान और आबरु आदि है न सब? मकान ऐसे पाँच-पाँच लाख, दश-दश लाख के मकान हों, सुन्दर स्त्री हो, खाने-पीने के (साधन) हों, रेशमी गद्दे हों, खाने-पीने के ऐसे लड्डू और अरबी (के भुजिये) और श्रीखण्ड-पुरी बनाये हों, परन्तु कहते हैं कि उसमें यदि उसे अन्दर कुछ दुःख-चिन्ता हो तो (कहता है) मजा नहीं आया। समझ में आया?

ऐसे कमनीय कामिनी आदिक भोग भी आपत्ति (दुर्निवार, शत्रु आदि के

द्वारा की गई बेचेनी).... देखो! इसमें कुछ ऐसा हो गया अन्दर में... आहाहा...! (वैसे समय में) **रोगों (ज्वरादिक व्याधियों) की तरह प्राणियों को आकुलता पैदा करनेवाले होते हैं।** लो! **भोग भी आपत्ति के समय में...** आपत्ति के समय। समझ में आया? **(दुर्निवार, शत्रु आदि के द्वारा की गई बेचेनी)...** बहुत साधन (होवे)... ए... दुश्मन आया। समझ में आया? 'राणपुर' में नहीं तुम्हारे? राजा किनारे क्रीड़ा करता था, दरबार क्रीड़ा करता था, उसमें शत्रु आया। शतरंज खेलता था। अरे! राजा! यह सेना आयी किनारे? किनारो छोटा गाँव है, राणपुर के पास है। उस ओर है न किनारो? यह सेना आयी किनारे। क्या मजा करे? हें...! घर में अनेक रूपवान सुन्दर रानियाँ.... खड़ा हुआ। हें...! देखो! यह धूल उड़े, आया यह, हों! इन सबको ले जाकर रानियों को ले जाएगा। उठा, फिर भगा। चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता... हाय! हाय! पीछे कह गया कि वहाँ यदि मेरी ध्वजा गिरे तो समझना कि मैं हार गया। सहज ही ऐसा हुआ कि वहाँ गया। ध्वजा तो वहाँ किसी ने फाड़ी। इन लोगों ने जाना कि ओहो! पड़ी, रानियाँ कुएँ में पड़ी। धव... धव... कुआ है न ऊपर? बहुत बड़ा कुआ है। रानियों ने जाना कि राजा गया, हार गया। अब वह आधीन करेगा। जीवित रानियाँ कुएं में (पड़ी)। देखो चिन्ता! क्षण में हर्ष था और क्षण में (दु:ख आ गया।) समझे न? राजा क्रीड़ा करना छोड़ सेना आयी किनारे - ऐसा कहा। ऐ राजा! छोड़ खेल। यह देख सेना आयी किनारे। रानियों को ले जायेंगे, राजा को उठा लेंगे। चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता...

कहते हैं, ऐसे समय में दुर्निवार शत्रु आदि (अर्थात्) निवारण न किया जा सके ऐसे समय में, हों! ऐसे काल में शत्रु आदि, शरीर में रोग आदि (आवे), लो न! **(ज्वरादिक व्याधियों) की तरह....** यह रोग जैसे आवे और इसे दु:ख लगे ऐसा। **प्राणियों को आकुलता पैदा करनेवाले होते हैं।** समझ में आया? इसमें अभी तो इन चिन्ताओं का पार नहीं होता। यह कालाबाजार और देखो न, अभी तो कहीं चैन नहीं मिलती। अरे! इसे कैसे वह सरकार कहीं पकड़ेगी, क्या करेंगे? पाँच लाख कमायें, वे बताये नहीं। अब क्या करें? बतावे तो चौरासी हजार ले जावे। ऐसा कुछ कहते हैं न? अपने को बहुत पता नहीं, हों! ऐसा कहते हैं। एक लाख में चौरासी हजार, अधिक कहे तो, दश लाख पैदा करता है। थोड़ा-बहुत आवे थोड़ा-बहुत। हाय! हाय! अब क्या करना इसमें? चिन्ता... चिन्ता...

चिन्ता... सब पैसेवाले भी अन्दर से चिन्ता में फँस गये, मूढ़ हो गये होते हैं, हों! वे मुफ्त के बाहर में (सुखी) लगें।

मुमुक्षु : मोटर है।

उत्तर : मोटर होवे तो क्या करे? कहा न, अन्दर ज्वाला सुलगती होती है। बाहर में बड़ी लाख की मोटर हो। क्या करेगा, क्या करेगा, कैसे पकड़ायेगा, पकड़ेगा। अरबपतियों को पिछले दरवाजे से भग जाना पड़ता है। अरे...! पकड़ ले तो ऐसा, पकड़े (कि) देर भी नहीं लगे। इसमें तेरे पैसे-बैसे पड़े रहें। ये प्राणियों को आकुलता उत्पन्न करनेवाले सुख हैं, भाई! रोग की तरह, हों! रोग। यह सब भोग आदि सामग्री (आकुलता उत्पन्न करनेवाली है।)

यही बात सांसारिक प्राणियों के सुख-दुःख के सम्बन्ध में है। लो! यह अनुकूलता दिखे, वहाँ ऐसा विघ्न आवे, कोई चिन्ता आवे, शरीर में क्षय रोग लागू पड़ गया। हाय! हाय! अब? एक व्यक्ति को कहा, ४८ वर्ष में नया विवाह किया... समझे न? और कैंसर हुआ। दस लाख रुपये... यह तो बहुत वर्ष की बात है, हाँ! दस लाख रुपये, ४८ वर्ष में विवाह किया और कैंसर (हुआ)। डॉक्टर को कहे - भाईसाहिब! दूसरे को कहना नहीं, हाँ! मुझे कहना, मैं पचा लूँगा; बाहर कहना नहीं, हाँ! यह स्त्री है, लड़का छोटा है, सब चिल्लायेंगे। ४८ वर्ष की उम्र, क्षय में मर गया। समझ में आया? डूंगरसीभाई! डूंगरसी गुलाबचन्द! लीमड़ी... लीमड़ी डूंगरसी गुलाबचन्द संघवी, ४८ वर्ष में पैसा बहुत हो गया, दस लाख रुपये उस समय। यह तो ४० वर्ष की बात है। नया विवाह और पैसावाला व्यक्ति, इज्जत बड़ी विसाश्रीमाली। डॉक्टर कहे कैंसर हुआ है। हें...! निभनेवाला नहीं, हाय...हाय...! इस बंगले का क्या करना, पैसे का क्या करना? जैसा होना होगा, वैसा होगा परन्तु बाहर बात करना नहीं। अन्त में देह छूट गया। बेचारा आता, हाँ! (संवत्) १९८२ का चातुर्मास वहाँ बढ़वाण में था न! वहाँ आता। लीमड़ी से व्याख्यान सुनने (आवे) हाँ! १९८२ के चातुर्मास में लीमड़ी से व्याख्यान सुनने आवे।

कहते हैं यह सब सुख संसारी को रोग समान सुख-दुःख लगें, उस समय रोग जैसा लगे, कहते हैं। जब चिन्ता आयी हो तो हाय... हाय...!

मुमुक्षु : देव को ऐसी चिन्ता नहीं आती।

उत्तर : यह तो कहा न! यहाँ तो एक साधारण व्याख्या की है। भले देव को नहीं परन्तु यह तो साधारण व्याख्या है न! देहधारी के सुख ऐसे हैं। उसे मृत्यु आवे तब लो! देव को ऐसा पता पड़े की यह माला मुरझायी... हाय...हाय...! ऐसे तो कितने ही देव यहाँ से जाते हैं, तू कोई नया नहीं है। कहाँ जाऊँगा? भाईसाहब! यहाँ से तो कोई मरकर एकेन्द्रिय में जाता है अथवा पशु में जाता है। देव को जहाँ समय आवे, आयुष्य पूर्ण हो, माला मुरझायी हुई दिखे, शरीर का तेज न दिखे... यह क्या हुआ? कि आयुष्य पूर्ण होने को आया। अब? असंख्य अरबों वर्ष यहाँ रहा हो। जायेगा कहाँ? पशु में... हें! अर..र! इस तिर्यंच की, इस गधी की कूख में, हथिनी की कूख में (जाये) फिर रोवे, वह देव। अरे! इसकी अपेक्षा एकेन्द्रिय में उत्पन्न होऊँ तो अच्छा - ऐसा विचार करे। यह नौ महीने गर्भ में रहना पड़ेगा, अर..र! यह असंख्य अरब वर्ष यहाँ रहे इसकी अपेक्षा तो (एकेन्द्रिय में जायें तो अच्छा) वह मरकर एकेन्द्रिय में जाये। आहाहा...! पृथ्वी में-हीरा में जाये, कोई सुगन्धित जल में जाये, वनस्पति में कोई फूल-फल में जाये। देव मरकर (वहाँ) जाये। उसमें है क्या? धूल। समझ में आया? आहाहा...!

इस आत्मा में आनन्द है, बापू! अन्यत्र कहीं है नहीं। यह तेरा शुभभाव किया हो तो भी स्वर्ग में सुख है नहीं - ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? बाहर की जरा सुविधा कम हो, वहाँ शोर मचाये, हाँ! जरा अनुकूलता आवे वहाँ तो फूल जाये, छाती फूल-फूल जाये... ओहोहो! क्या है परन्तु? सन्निपात है, सन्निपात।

कहते हैं सुख तो आत्मा में है, भाई! यह शुभभाव किया, समकिती को आया, उसे शुभभाव का फल आया परन्तु उसमें सुख मानता नहीं। अज्ञानी को (ऐसा लगता है) हाय...हाय..! शरीर अच्छा था, (तब) किया नहीं। अब यह हुआ, चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता..., जले-सुलगे और नरक में चला जाये। नरक और निगोद।

ये प्रतीत (मालूम) होनेवाले जितने इंद्रियजन्य सुख व दुःख हैं, वे सब वासनामात्र ही हैं। लो! इस पैसे में, स्वर्ग में, मनुष्य में, चक्रवर्ती में, सर्वत्र जो कुछ इन्द्रियजन्य सुख-दुःख है... देखो! सुख-दुःख दोनों लिये, हों! यह रोग आया, प्रतिकूलता आयी वह दुःख है, वह भी वासनामात्र है, वह दुःख है ही नहीं, तेरी मान्यता में दुःख है।

रोग आया, प्रतिकूलता आयी (तो) कहते हैं, वह दु:ख नहीं; तेरी कल्पना में (आता है कि) मुझे दु:ख आया, इस तेरी मान्यता में दु:ख है और अनुकूलता आवे, वह सुख है, वह तेरी कल्पना में सुख तूने माना है; (सुख) है नहीं। आहाहा!

वे सब वासनामात्र ही हैं। देहादिक पदार्थ न जीव के उपकारक ही हैं और न अपकारक ही।.... देखो! शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, मकान, पैसा यह नहीं जीव को उपकारक (अर्थात्) ये उपकार करनेवाले नहीं। यह देह उपकार करनेवाली नहीं? बहुत से कहते हैं न? उपकार करता है। शास्त्र में-तत्त्वार्थसूत्र में आता है कि उपकार करे, ऐसा करे, वैसा करे... यह तो निमित्त हो, उसकी बात है। यह तो पुद्गल की बात है।

देहादिक पदार्थ - यह शरीर, वाणी, बाहर का पैसा, मकान, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, लक्ष्मी के हीरे के ढेर, ये पदार्थ उपकारक नहीं और अपकारक भी नहीं। यह नुकसान करनेवाले भी नहीं और लाभदायक भी नहीं। सत्य बात होगी? इस शरीर में रोग (आवे), वह कोई नुकसानकारक नहीं - ऐसा कहते हैं और शरीर में निरोगता, वह उपकारकारक -लाभदायक नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया जयचन्दभाई? पढ़ो तो सही, नीचे तो देखो। यह देहादिक... है दूसरी लाईन? देह अर्थात् शरीर, आदि अर्थात् स्त्री, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, टोपी, मकान, हीरा, माणिक, जवाहरात, मोटर यह न जीव को उपकारक है, यह उपकार करनेवाले हैं नहीं तथा देहादिक न अपकारक, यह नुकसान करनेवाले नहीं।

मुमुक्षु : यह तो स्वस्थ देह की बात है न! रोगी देह को....

उत्तर : परन्तु दोनों देह की बात है, पूरा देह लिया न, फिर प्रश्न (कहाँ है)? इसलिए तो पहले दो प्रश्न किये - निरोग देह आत्मा को उपकारक नहीं, सरोग देह आत्मा को अपकारक नहीं। दोनों की व्याख्या है या क्या व्याख्या है यहाँ? इसी प्रकार लक्ष्मी पाँच-पच्चीस लाख मिली, वह आत्मा को उपकारक नहीं और निर्धनता, वह आत्मा को नुकसानकारक नहीं। आहाहा! यह लड़के अच्छे पके, आठ बड़े योद्धा जैसे, छह-छह हाथ के लम्बे और यूरोपियन जैसे, यह आत्मा को नुकसानकारक भी नहीं और लाभदायक भी नहीं। शत्रु जैसे लड़के पकें तो कहते हैं कि वे नुकसानकारक नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। परद्रव्य आत्मा को नुकसानकारक नहीं है।

मुमुक्षु : .....

उत्तर : यह भ्रमणा घुसा डाली इसने - ऐसा कहते हैं न यह। डाली इसने, कहाँ से गिरे ? नाक में विष्टा का गूँगा डाला, गोली!

भँवरा था न ? भँवरा (उसे लगा) लाओ न कि यह मेरे जैसा लगता है। विष्टा की गोलीवाला था न! भँवरा कहे चल न मेरे फूल में। गुलाब के फूल के ऊपर लाया। लाने के बाद कहे - ऐ कैसी सुगन्ध है ? वह भँवरा कहे देखो! यहाँ बहुत सुगन्ध है, वह कहे ऐसी की ऐसी लगती है। यह क्या ? नाक में देखे तो छोटी मूँग जितनी विष्टा की गोली लाया और गुलाब के ऊपर बैठा, इसलिए विष्टा की गन्ध आती, गुलाब की गन्ध नहीं आती। समझ में आया ?

इसी प्रकार भ्रम डालकर देखता है; इसलिए इसे पता नहीं पड़ता। अपकारक-उपकारक को माननेवाली भ्रमणा है। यह भ्रम की गोली इसने डाली है। कोई परपदार्थ अपकारक-उपकारक है नहीं। आत्मा का आनन्द, वह उपकारक है और राग-द्वेष, वह आत्मा को नुकसानकारक है; बाकी कोई बाहर में अपकारक-उपकारक है नहीं - ऐसी इसे श्रद्धा करके आत्मा का ज्ञान करना। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)